जैन परम्परा में आचार तत्व

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

भारत में आचार को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। यहां पर अनेक विचार, अनेक आचार, अनेक सम्प्रदाय और अनेक मतमतान्तर हैं। इसके बावजूद यहां पर सभी धर्मों और सम्प्रदायों के लोग अपने–अपने मत के अनुसार आचार विचार का पालन करते हैं। आचारवान व्यक्ति किसी के विषय में बुरा नहीं सोचता। जैन दर्शन में आचार को बहुत महत्व दिया गया है। जैन दर्शन में साधुओं और श्रावकों के लिए आचार पालन का विधान किया गया है। साधु पूर्ण संयमी होता है और श्रावक पूर्ण संयमी नहीं होता। साधुओं के लिए पंचमहाव्रतों का पालन अनिवार्य रूप से करना पड़ता है। पांच महाव्रत, पांच समिति, पांच इन्द्रियों का निरोध, छह आवश्यक, लोच, आचेलक्य, अस्नान, क्षितिशयन, अदन्तधावन, स्थिति भोजन और एकभक्त यतियों के लिए पालनीय होते हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पांच महाव्रत हैं– अहिंसा जैन आचार शास्त्र का केन्द्रीय तत्त्व है। आगमों और तदुपजीवी प्रायः सभी ग्रन्थों में अहिंसा की महनीयता का वर्णन किया गया है। जैन श्रमण अहिंसा का सर्वश्रेष्ठ साधक है। वह मन, वाणी और काय से हिंसा नही करता, न करवाता है और न हिंसा करने वाले का अनुमोदन ही करता है। जैसा हुआ है, वैसा ही कहना सत्य का सामान्य लक्षण है, परन्तु अध्यात्म मार्ग में स्व–पर अहिंसा की प्रधानता होने से हित व मित वचन को सत्य कहा जाता है। सत्य का अर्थ है– प्रतिज्ञा। प्रतिज्ञा के अनुसार व्रतों का पालन करना सत्य है। स्तेय से तात्पर्य है चोरी ओर अस्तेय का तात्पर्य है चोरी न करना। किसी की निन्दा करना, किसी के दोषों को देखना, चुगली करना, अन्य जीवों के प्राणों का अपहरण करना, दूसरे के अधिकार को छीनना, किसी की भावना को ठेस पहुंचाना, किसी के साथ अन्याय करना आदि सभी स्तेय के अन्तर्गत आते हैं। अस्तेय महाव्रत के साधक को इन सभी प्रवृत्तियों से अपने को बचाना होता है। बिना दी गयी वस्तु को स्वयं की इच्छा से उठाना, स्वामी की अनुमति के बिना किसी भी वस्तु को ग्रहण करना व उसका उपभोग एवं उपयोग करना अदत्तादान है। इसे ही चोरी कहते हैं। ब्रह्मचर्य का अर्थ है– आत्मविद्या या आत्मविद्याश्रित आचरण। ब्रह्मचर्य के तीन अर्थ हैं– वीर्य रक्षण,

आत्म–रमण और विद्याध्ययन। ब्रह्मचर्य का विधेयात्मक रूप तो अपनी आत्मा या परमात्मा की उपासना में लगना है। अपरिग्रह महाव्रत को जानने के लिए परिग्रह को जानना आवश्यक है। परिग्रह का अर्थ है– ममत्व बुद्धि से किसी वस्तु का ग्रहण करना। किसी वस्तु का समस्त रूप से ग्रहण करना, अथवा मूर्च्छावश जिसे ग्रहण किया जाता है या अपनेपन–मेरेपन के भाव से यह 'मेरी है', इस बुद्धि से जिसे ग्रहण किया जाय, उसे परिग्रह कहते हैं। ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, निक्षेपादान तथा मलमूत्रादि का प्रतिष्ठापन सम्यक् परित्याग ये समितियां पांच प्रकार की हैं। चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा और स्पर्शन–इनका निरोध साधुओं को करना चाहिए। सामायिक, स्तुति, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और व्युत्सर्ग ये छह आवश्यक क्रियाएं हैं। साधु इनका पालन करता है। केशलुंचन, आचेलक्य, अस्नान, क्षितिशयन, अदन्तघर्षण, स्थितभोजन और एकभक्त का निष्ठापूर्वक पालन साधु के आचार में परिगणित है।

श्रावकों के लिए पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षा व्रत का आचरण आवश्यक होता है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह व्रत श्रावकों के अणुव्रत है। अनर्थदंड का परित्याग करना, दिशाओं में जाने की मर्यादा करना और उपभोग परिभोग का परिमाण करना श्रावकों के लिए आवश्यक है। सामायिक, देशावकाशिक, पोषधोपवास, अतिथिसंविभाग और अन्त में मरणान्तिक संलेखना यह अगार धर्म है जो श्रमणोपासक या श्रमणोपासिका इस धर्म का पालन करता है वह भगवान् की आज्ञा का आराधक है। उपासक या श्रावक के लिए अणुव्रतों का पालन करना आवश्यक है, इसलिए वह अणुव्रती कहलाता है। गृहस्थ धर्म का पालन करने के कारण गृहस्थधर्मी भी कहलाता है। श्रावक जिन व्रतों का यथाशक्ति पालन करता है वे अणुव्रत कहलाते हैं। अणु का अर्थ है छोटा या लघु और व्रत का अर्थ नियम है। दैनिक व्यवहार में आचरणीय जो छोटे–छोटे नियम हैं वे अणुव्रत कहलाते हैं। श्रमणों द्वारा पालित नियम महाव्रत कहलाते हैं, पर श्रावक उन नियमों का पालन मर्यादित रूप में करता है, इसलिए उसके व्रत को अणुव्रत कहा जाता है। वास्तव में व्रत छोटा या बड़ा नहीं होता। व्रत को अखण्ड ग्रहण न कर पाने पर वह अणु कहलाता है। जो वस्तुएं एक बार काम में आती हैं उसे उपभोग तथा जो वस्तुएं बार–बार काम में आती है उसे परिभोग कहा है। उपभोग और परिभोग में आने वाली वस्तुओं की मर्यादा को निश्चित करना उपभोग परिभोगपरिमाणव्रत है।

बिना किसी उद्देश्य से जो हिंसा की जाती है उसका समावेश अनर्थदण्ड में होता है। जो हिंसा लौकिक दृष्टि से आवश्यकता या प्रयोजनवश की जाती है और निरर्थक की जाने वाली हिंसा में बड़ा भेद है। जो आवश्यक हिंसा है वह तो क्षम्य है, किन्तु जो बिना किसी प्रयोजन के हिंसा करता है वह हिंसा अक्षम्य है। शिक्षा का सामान्य अर्थ है––अभ्यास। जिस प्रकार शिक्षार्थी बार–बार अभ्यास करता है, वैसे ही श्रावक को व्रतों का बार–बार अभ्यास करना चाहिए। शिक्षाव्रत बार–बार ग्रहण किये जाते हैं, ये कुछ समय के लिए ही होते हैं। इन्हें सामायिक, देशावकाशिक, पौषधोपवास एवं अतिथिसंविभाग इन चार रूपों में विभोजित किया गया है।